इकाई 8 प्राकृतिक संसाधन (NATURAL RESOURCES)

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 प्राकृतिक संसाधनों की जानकारी

8.2.1 प्राकृतिक संसाधनों का वर्गीकरण

8.3 भूमि एवं मृदा

8.3.1 भारत में भूमि का उपयोग

8.3.2 भूमि-उपयोग की प्रवृत्तियाँ

8.3.3 मिट्टियाँ

8.3.4 भू-क्षरण की समस्या

8.4 जल संसाधन

8.4.1 नदियाँ

8.4.2 अपर्याप्त उपलब्धि की समस्या

8.5 वनीय संसाधन

8.5.1 वर्तमान स्थिति

8.5.2 वनों की अपर्याप्तता एवं कटाई की समस्या

8.5.3 राष्ट्रीय वन नीति, 1952

8.5.4 राष्ट्रीय वन नीति, 1988

8.6 खनिज संसाधन

8.6.1 नई खनिज नीति, 1993

8.6.2 नई आर्थिक नीति एवं निजीकरण

8.7 ऊर्जा संसाधन

8.7.1 वाणिज्यिक संसाधन

8.7.2 गैर-व्यावसायिक ऊर्जा के स्रोत

8.8 सारांश

8.9 शब्दावली

8.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- देश के भौतिक आयामों जैसे भू-क्षेत्र, इसके उपयोग, उपलब्ध मिट्टी, जल, खनिज आदि की पहचान कर सकें;
- ये कारक संसाधनों के उत्पादन को किस प्रकार प्रभावित करते हैं, इसके बारे में चर्चा कर

- इन संसाधनों की मात्रा और उत्पादकता का स्तर बढ़ाने के लिए उठाए गए कदमों की समीक्षा कर सकें;
- अर्थव्यवस्था में खनिज संसाधनों एवं वनीय संसाधनों की भूमिका बता सकें; और
- ऊर्जा के विभिन्न स्रोतों और उनके सापेक्ष महत्व का वर्णन कर सकें।

8.1 प्रस्तावना

अन्य विकासशील देशों की तरह भारत में जनसंख्या का बड़ा भाग अपनी जीविका के लिए कृषि एवं इसकी सम्बद्ध क्रियाओं पर निर्भर करता है। कृषि एवं सम्बद्ध क्रियाएं प्रत्यक्ष रूप से प्राकृतिक संसाधनों के प्रयोग से जुड़ी होती हैं। भारत में विविध प्रकार के प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध हैं। इनकी सहायता से हम निश्चय ही एक आधुनिक मज़बूत अर्थव्यवस्था के निर्माण में सफल हो सकते हैं।

8.2 प्राकृतिक संसाधनों की जानकारी

अन्य विकासशील देशों की तुलना में हमें अपने प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता के बारे में बेहतर जानकारी उपलब्ध है। पिछले 100 वर्षों या इससे भी अधिक समय से देश के संसाधनों के सर्वेक्षण का काम विशिष्ट संस्थाओं द्वारा निरंतर किया जा रहा है।

पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान, प्राकृतिक संसाधनों के सर्वेक्षण के काम में और तेज़ी लाई गई। पहले से स्थापित **"सर्वे ऑफ इण्डिया" (Survey of India)** और **"जिओलॉजिकल सर्वे आफ इन्डिया" (Geological Survey of India)** आदि संस्थानों का विस्तार किया गया जिससे कि वे अपने कार्य-परिधि में नए कार्यक्रमों को जोड़ सकें। इसके साथ ही अनेक नई संस्थाओं की भी स्थापना की गई और उन्हें उन क्षेत्रों में सर्वेक्षण की जिम्मेदारी सौंपी गई जहाँ पहले इस तरह का काम नहीं हो रहा था। सन 1950 में **"इण्डियन ब्यूरो ऑफ माइन्स" (Indian Bureau of Mines)** की स्थापना की गई। इस संस्था को प्राकृतिक संसाधनों के आर्थिक मूल्यांकन एवं इनके विकास के कार्यक्रम तैयार करने की जिम्मेदारी दी गई। पाँचवे दशक के अंत में **"तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग" (Oil and Natural Gas Commission)** का गठन किया गया। इस संगठन द्वारा पेट्रोलियम संसाधनों की खोज एवं विकास का काम किया जाता है। इस संगठन को असम, गुजरात एवं मुम्बई समुद्र में तेल और गैस की सफल खोज करने का श्रेय प्राप्त है। **"केंद्रीय जल तथा ऊर्जा आयोग" (The Central Water and Power Commission)** का जिसे कि अब दो अलग भागों में विभाजित कर दिया गया है, सन 1945 में गठन किया गया था। जल और ऊर्जा संबंधी संसाधनों का अध्ययन और उनके विकास के लिए कार्यक्रम तैयार करना इस संगठन का कार्य-क्षेत्र रहा। **इण्डियन काउंसिल ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च (Indian Council of Agricultural Research)** के अधीन **"सोयॅल लैंड यूज़ सर्वे" (Soil Land Use Survey)** की स्थापना की गई है। यह संगठन राज्य स्तर के कृषि विभागों के सहयोग से मिट्टी के बारे में सर्वेक्षणों का आयोजन करता है। प्राकृतिक संसाधनों के मूल्यांकन एवं उपयोग के बारे में वैज्ञानिक शोध एवं अध्ययनों का काम राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं एवं संस्थानों द्वारा किया जाता है।

किंतु अभी अनेक क्षेत्र अछूते पड़े हैं तथा किन्हीं कारणों से वहाँ समुचित सर्वेक्षण नहीं हो पाए हैं। आवश्यकता इस बात की है कि सर्वेक्षण की आधुनिकतम तकनीकों का प्रयोग किया जाए और उनकी सहायता से अद्यतन जानकारी प्राप्त की जाए। एरियल फोटोग्राफी (aerial photography), ऐरो-मेगनेटिक सर्वे (aero-magnetic survey), रिमोट-सेंसिंग (remote sensing) आदि विकसित तकनीकों की सहायता से दूर-दराज के क्षेत्रों में भी आसानी से सर्वेक्षण का काम पूरा किया जा सकता है। इनके प्रयोग से शीघ्र ही परिणाम भी मिल जाते हैं। अब जब प्राकृतिक संसाधनों के वैज्ञानिक ढंग से समुचित प्रयोग करने की आवश्यकता आ खड़ी हुई है, अद्यतन विकसित तकनीकों के उपयोग से मूल्यवान सहायता मिल सकती है।

8.2.1 प्राकृतिक संसाधनों का वर्गीकरण

प्राकृतिक संसाधनों को दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है। ये हैं :

1) पुनरूत्पादनीय संसाधन; तथा

2) गैर-पुनरूत्पादनीय संसाधन।

1) **पुनरूत्पादनीय संसाधन (Reproducible resources)** : पुनरूत्पादनीय संसाधन उन प्राकृतिक पदार्थों की उपलब्धता है जिनमें समय-समय पर स्वतः ही वृद्धि होती है। वृद्धि की यह प्रक्रिया प्राकृतिक देन हो सकती है अथवा इनके लिए मानवीय प्रयास भी किए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, नदियों में पानी की मात्रा, भूतल में पानी की मात्रा, वनों के आकार आदि में प्राकृतिक वृद्धि अपेक्षित होती है और थोड़े मानवीय प्रयासों से इस वृद्धि को अनुकूल दिशा में प्रवाहित किया जा सकता है।

2) **गैर-पुनरूत्पादनीय संसाधन (Non-reproducible resources)** : गैर-पुनरूत्पादनीय संसाधन वे पदार्थ हैं जोकि हमें एक पूर्व-निश्चित स्टॉक में उपलब्ध हैं, जैसे - कोयला, कच्चा तेल, लौह चूर्ण, अभ्रक आदि। जैसे-जैसे हम इनका उपयोग करते जाते हैं, इनकी मात्रा कम होती जाती है। अतः इनके उपयोग के बारे में हमें वर्तमान उपभोग और भावी आवश्यकताओं में संतुलन बनाए रखने पर विचार करना होता है। वैसे यह भी होता है कि अनेक बार इनके स्टॉकों की जानकारी ही नहीं होती। अतः इनकी खोज के लिए भी हमें प्रयत्न करने पड़ते हैं।

8.3 भूमि एवं मृदा

उत्तर से दक्षिण की ओर भारत की कुल लम्बाई 3,214 किलोमीटर तथा पूर्व से पश्चिम की ओर 2,933 किलोमीटर है जबकि भारत का कुल भू-क्षेत्र 32,87,782 वर्ग किलोमीटर है। भू-क्षेत्र की दृष्टि से भारत विश्व का सातवाँ सबसे बड़ा देश है। छः बड़े देश क्रमवार ये हैं - रूस, कनाडा, चीन, अमरीका, ब्राज़ील, एवं ऑस्ट्रेलिया। स्पष्टतः भारत एक बड़े आकार का देश है तथा अपनी भौगोलिक स्थिति, आकार एव आर्थिक संसाधनों की सम्पदा के कारण अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकने के योग्य है।

8.3.1 भारत में भूमि का उपयोग

देश का कुल भू-क्षेत्र वह उच्च सीमा निर्धारित कर देता है जहाँ तक कि विकास कार्यक्रमों के लिए भूमि की उपलब्धता की अपेक्षा की जा सकती है। विकास कार्यक्रम जैसे-जैसे आगे बढ़ते हैं, भूमि की आवश्यकताएँ बढ़ती जाती हैं। परिणामस्वरूप भूमि का उपयोग इन उपयोगों की ओर क्रमशः अंतरित (diverted) होता जाता है। सामान्यतः भूमि का उपयोग कृषि-कार्यों से बदलकर गैर-कृषि कार्यों की ओर होने लगता है। इन गैर-कृषि उपयोगों में हम उल्लेख कर सकते हैं; उद्योग, विनिर्माण, व्यापार आदि क्रियाओं का। एक विकासशील श्रम-अतिरेक वाली अर्थव्यवस्था जहाँ कृषि ही प्रमुख जीविका का साधन होती है, भूमि का कृषि-उपयोग से गैर-कृषि उपयोगों में चला जाना अनेक गम्भीर समस्याओं का कारण बन सकता है। ऐसी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में कृषि पदार्थों, विशेष रूप से खाद्यान्न की कमी की स्थिति आ सकती है। ऐसी परिस्थिति में समस्त विकास-प्रक्रिया ही डगमगा सकती है। भूमि की गैर-कृषि उपयोगों की बढ़ती माँग की परिस्थिति में यह सिफारिश की जाती है कि पहले से बेकार पड़ी अथवा कम उपजाऊ या पथरीली भूमि में सुधार के कार्य किए जाने चाहिए और ऐसी भूमि को कृषि एवं गैर-कृषि उपयोगों के योग्य बनाया जाना चाहिए। इस संदर्भ में उपलब्ध भूमि का प्रयोगवार विवरण अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है।

भारत में उपलब्ध भूमि के उपयोग के बारे में जानकारी तालिका-1 में प्रस्तुत की गई है:

तालिका-1 : भारत में भूमि का उपयोग

(मिलियन हैक्टेयर)

1.	गैर-कृषि कार्यों के अंतर्गत भू-क्षेत्र	21.2
2.	बंजर एवं कृषि-अयोग्य भू-क्षेत्र	19.7
3.	निवल खेती के अंतर्गत भू-क्षेत्र	142.2
4.	अच्छे बने वनीय क्षेत्र	38.6
5.	पेड़ों और पेड़-झुंडों के अंतर्गत क्षेत्र	3.7
6.	कम घने वनीय क्षेत्र	29.3
7.	कृषि-योग्य किंतु व्यर्थ रखा क्षेत्र	15.0
8.	वर्तमान में खाली रखा भू-क्षेत्र	13.8
9.	पहले से ही खाली रखा क्षेत्र	9.6
10.	स्थायी चरागाह	11.8
	कुल*	**304.9**

*इतने कुल भौगोलिक क्षेत्रफल के उपयोग के बारे में ही आंकड़े उपलब्ध हैं।

तालिका-1 से यह स्पष्ट जानकारी मिल जाती है कि भावी विकास-क्रम में कितनी मात्रा में भूमि की उपलब्धता की अपेक्षा की जानी चाहिए। इसके उपयोग के आधार पर उपलब्ध भू-क्षेत्र को दो भागों में बाँटा जा सकता है : (1) कृषि-योग्य भूमि; तथा (2) गैर-कृषि योग्य भूमि।

कृषि-योग्य भूमि (Agricultural Land) : इस वर्ग में हम उन भूमि-खण्डों को शामिल करते हैं जिनपर वर्तमान में खेती-बाड़ी हो रही है तथा जो खाली पड़े हैं एवं जिनमें पेड़ आदि लगाए गए हैं। इस समय भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का लगभग 50 प्रतिशत भाग कृषि-योग्य भूमि है। बड़े आकार या मध्य आकार वाले सभी देशों की तुलना में भारत में कृषि-योग्य भूमि का अनुपात सर्वाधिक है। यह निम्न बातों का प्रतीक है :

(i) मैदानी इलाकों एवं समतल भूमि (plains) के विस्तृत स्वरूप आदि भौतिक कारकों के अनुकूल प्रभाव, एवं

(ii) कृषि-योग्य भूमि पर खेती-बाड़ी का विस्तार आदि।

यद्यपि कृषि-योग्य भूमि आकार में बहुत विस्तृत है, लेकिन यदि हम इसकी तुलना जनसंख्या से करते हैं तो हम पाते हैं कि प्रति व्यक्ति भूमि की उपलब्धता जो मात्र 0.20 हैक्टेयर ही अनुमानित है, बहुत कम है। खेती-बाड़ी के अंतर्गत कुल भू-क्षेत्र के 15 प्रतिशत भाग पर साल में एक से अधिक फसलों का उत्पादन किया जाता है। लगभग एक-चौथाई भाग को ही सिंचाई की सेवाएँ उपलब्ध हैं।

(2) **गैर-कृषि योग्य भूमि (Non-agricultural land)** : इस वर्ग में वनों, चरागाहों, शहरों, गाँवों, सड़कों, रेल आदि गैर-कृषि कार्यों में प्रयुक्त भूमि को शामिल किया जाता है। इसके अलावा, पहाड़ी एवं मरुस्थली ज़मीन तथा वह सब क्षेत्र जो खेती-बाड़ी के योग्य नहीं है और व्यर्थ ही पड़े हैं, को इसी वर्ग में शामिल किया जाता है।

8.3.2 भूमि-उपयोग की प्रवृत्तियाँ (Trends in Land Utilisation)

योजनावधि में भूमि के उपयोग के बारे में जो प्रवृत्तियाँ सामने आई हैं, उनमें निम्न दो प्रमुख हैं:

i) व्यर्थ पड़ी और खाली पड़ी भूमि की बड़ी मात्रा को उपयोग-योग्य बनाया गया है, तथा

ii) एक से अधिक फसल के लिए प्रयुक्त भूमि की मात्रा में भारी वृद्धि हुई है।

पाँचवें दशक के दौरान ज़मींदारी और जागीरदारी प्रणालियों की समाप्ति जैसे भू-सुधार कार्यक्रम लागू होने के बाद व्यर्थ और खाली पड़ी भूमि को पुनः उपयोग के योग्य बनाने के काम ने गति पकड़ी। इस काम में भूतपूर्व ज़मींदारों ने तथा काश्तकारों ने रुचि दिखलाई। ज़मींदार, जो भूमि उनके पास व्यक्तिगत खेती-बाड़ी के लिए बच गई थी, उसका भरसक प्रयोग अपने लाभ के लिए उठाना चाहते थे और इसी तरह से जिन काश्तकारों को भूमि के अधिकार प्राप्त हुए वे भी इस काम में जुट गए। इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाने में सरकार ने भी ऋणों एवं अनुदानों के रूप में पर्याप्त वित्तीय सहायता प्रदान की।

योजनावधि में एक से अधिक फसल की खेती में प्रयुक्त भू-क्षेत्र में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए कि (i) भविष्य में गैर-कृषि उपयोगों में भूमि की माँग बढ़ती ही रहेगी; और (ii) कृषि-योग्य भूमि की मात्रा सरलता से नहीं बढ़ाई जा सकती, हमें इस ओर ग़ौर करना होगा कि आधुनिक तकनीक के प्रयोग से हम उपलब्ध भूमि पर साल में एक से अधिक फसलों का उत्पादन करें। अनुभव यह है कि तीन या चार फसलें भी आसानी से पैदा की जा सकती हैं बशर्ते कि इसके लिए पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध हों।

भविष्यवक्ताओं के अनुसार सन 2000 ई. में हमें उच्च अनुमानों के आधार पर 46.2 करोड़ हेक्टेयर भूमि की या निम्न अनुमानों के आधार पर 42.7 करोड़ हेक्टेयर भूमि की आवश्यकता होगी। किसी भी परिस्थिति में हम यह तो जानते हैं कि देश का कुल क्षेत्र पूर्व-निश्चित और सीमित है तथा इसमें किसी तरह की वृद्धि संभव नहीं है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि उपलब्ध भूमि क्षेत्र का विभिन्न वैकल्पिक प्रयोगों में सुचिंतित तरीके से बँटवारा किया जाए। जहाँ तक संभव हो, गैर-कृषि कार्यों के लिए गैर-कृषि योग्य भूमि का ही इस्तेमाल किया जाना चाहिए। ऐसा करने से न केवल खेती-बाड़ी के लिए पर्याप्त मात्रा में भूमि बची रहेगी बल्कि संतुलित क्षेत्रीय विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करना संभव हो पाएगा।

8.3.3 मृदा अथवा मिट्टियाँ (Soils)

किसी देश का फसलों का प्रतिरूप (crop pattern) बहुत कुछ उसके भौतिक पर्यावरण एवं मिट्टियों के स्वरूप से प्रभावित होता है। **इण्डियन काउंसिल ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च (ICAR)** द्वारा भारत में उपलब्ध मिट्टियों को आठ भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है : (i) दोमट मिट्टी (ii) विभिन्न प्रकार की काली मिट्टी (iii) लाल मिट्टी (iv) पहाड़ी मिट्टी (v) वनीय मिट्टी (vi) शुष्क मिट्टी (vii) क्षारीय एवं लवणीय मिट्टी, तथा (viii) सेन्द्रिय (peaty and organic) मिट्टी।

इन सभी वर्गों में पहले चार वर्ग - अपने महत्व के क्रम में दोमट, काली, लाल एवं पहाड़ी - प्रमुख हैं। दोमट मिट्टी अधिक गर्म, गहरी और उपजाऊ होती है। वैसे तो रबी और खरीफ की सभी फसलें इसमें पैदा होती हैं, लेकिन गेहूं, चावल, गन्ना, तम्बाकू और पटसन की खेती के लिए यह मिट्टी विशेष रूप से उपयुक्त होती है। काली मिट्टी भी बहुत उपजाऊ है। इसमें अधिक समय तक नमी बनाए रखने की शक्ति होती है। यही कारण है कि कपास की खेती के लिए यह बहुत उपयुक्त मानी जाती है। इसी तरह, लाल मिट्टी में भी विभिन्न प्रकार की फसलों जैसे कपास, चावल, गेहूं, ज्वार, बाजरा आदि की खेती की जाती है। पहाड़ी मिट्टी चाय और मोटे अनाजों की खेती के अनुकूल होती है।

संक्षेप में, देश में विभिन्न प्रकार की मिट्टी मिलती है। सभी प्रकार की मिट्टी सभी प्रदेशों में प्रायः बँटी है। ये मिट्टियाँ बहुत उपजाऊ हैं और ऊंची उत्पादकता के योग्य हैं। इनकी सहायता से देश में प्रायः सभी तरह की फसलों की खेती संभव होती है।

8.3.4 भू-क्षरण की समस्या (Problem of Soil Erosion)

सदियों से निरंतर शोषित होने के परिणामस्वरूप और ठीक देख-रेख के अभाव में भारत की मिट्टियों की कुशलता और उपजाऊपन गिरता रहा है। इसके साथ ही देश के समक्ष भू-क्षरण की भारी समस्या प्रकट हो गई है।

भू-क्षरण से तात्पर्य भूमि के ऊपरी भाग के कटाव से है। भूमि का यह भाग सबसे अधिक उपजाऊ होता है। जब तेज़ी से वर्षा होती है और पानी की चोट से भूमि की ऊपरी परत में कटाव आ जाते हैं तो बहाव के साथ मिट्टी बहने लगती है। भू-क्षरण अनेक कारकों का संयुक्त परिणाम है, जैसे वन-कटाई, चरागाहों की अत्यधिक चराही, स्थानांतरित खेती-बाड़ी, खेती-बाड़ी के गलत तरीकों का प्रयोग, सड़क निर्माण आदि।

भारत में भू-क्षरण की समस्या काफी बड़े क्षेत्र में फैली हुई है। एक मोटे अनुमान के अनुसार देश में लगभग 8 करोड़ हेक्टेयर भू-भाग थोड़ा-बहुत इस समस्या से प्रभावित है।

पंचवर्षीय योजनाओं में भू-क्षरण को रोकने के लिए अनेक प्रयास किए गए हैं। किंतु इस कार्यक्रम के अनुपालन में अनेक कठिनाइयाँ आई हैं :

i) सामुदायिक भूमि के उचित प्रबंधन की कठिनाई, अनुभवी और प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं की कमी

ii) केंद्र एवं राज्य स्तर पर समुचित संगठन का अभाव

iii) भू-संरक्षण कानून में ढील

iv) अंतर्विभागीय तालमेल तथा सामाजिक योगदान की अनुपलब्धि आदि।

बोध प्रश्न 1

1) भूमि-उपयोग से सम्बद्ध आँकड़ों की उपयोगिता का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) एक से अधिक फसल की खेती वाले क्षेत्र से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) भारत में मिलने वाली विभिन्न मिट्टियों के नाम बतलाएँ।

.....

.....

.....

.....

.....

4) विभिन्न मिट्टियों की उपलब्धता की क्या भूमिका है?

.....

.....

.....

.....

.....

8.4 जल संसाधन (WATER RESOURCES)

भारतीय अर्थव्यवस्था में जल ऊर्जा-आपूर्ति का एक प्रमुख स्रोत है। अर्थव्यवस्था में कुल निर्मित ऊर्जा का लगभग एक-चौथाई भाग जल परियोजनाओं से ही प्राप्त होता है। जल का प्रयोग कृषि में सिंचाई के वास्ते भी किया जाता है। चूँकि भारतीय अर्थव्यवस्था की उन्नति कृषि-क्षेत्र के साथ पूरी तरह से जुड़ी हुई है, अतः जल की पर्याप्त उपलब्धि आर्थिक विकास के कार्यक्रमों को उचित दिशा-बोध करवा सकती है।

भारत में जल प्रमुख रूप से दो स्रोतों से प्राप्त होता है। ये हैं - (i) तल से प्राप्त जल (surface water); और (ii) भूमिगत जल (ground water)। पहले रूप में हमें पानी नदियों, झीलों आदि स्रोतों से प्राप्त होता है जबकि भूमिगत जल की आपूर्ति कुएं, झरने आदि स्रोतों से होती है। इसके अलावा भी जल के अन्य स्रोत हैं जिनका कि हम उपयोग नहीं कर पाए हैं, जैसे खारीय झीलें (saline lakes), खारीय झरने, बर्फ आदि। तल के ऊपर जल वाले स्रोतों की वर्षा द्वारा पुनः वृष्टि (replenishment) होती रहती है।

जल के उपरोक्त दोनों स्रोतों में तल के ऊपर के स्रोत अधिक महत्वपूर्ण हैं और भावी आर्थिक विकास में इन्हें महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। भू-तल से हमें नदियों द्वारा प्रमुखतः जल की उपलब्धि होती है।

8.4.1 नदियाँ

भारत की नदियों को चार भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है। ये हैं -

i) हिमालय की नदियाँ,

ii) दक्षिणी नदियाँ

iii) तटीय क्षेत्रों की छोटी नदियाँ; एवं

iv) आंतरिक नल-निर्माण प्रणाली से बनी नदियाँ।

हिमालय की नदियों को प्रायः पर्वतीय बर्फ (snow) से पानी मिलता है। अतः इनका प्रवाह वर्ष-पर्यन्त बना रहता है। मानसून के समय इन नदियों में पानी का प्रवाह बहुत तेज़ बढ़ जाता है जिनके परिणामस्वरूप बाढ़ आदि का प्रकोप सहन करना पड़ता है। दक्षिणी नदियों के लिए वर्षा ही पानी का प्रमुख स्रोत है। परिणामस्वरूप, इन नदियों के जल के स्तर में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। तटीय नदियों और विशेष रूप से पश्चिमी तटों की नदियों की लम्बाई छोटी होती है और इनका प्रभाव-क्षेत्र सीमित है। इन नदियों में वर्ष भर पानी का प्रवाह नहीं बना रहता बल्कि यह काफी समय सूखी ही रहती हैं। आंतरिक जल निकासी प्रणाली से उत्पन्न नदियाँ प्रमुख रूप से पश्चिम राजस्थान में पाई जाती हैं। ये प्रायः सभी मौसमी स्वरूप की ही होती हैं।

गंगा नदी देश की सबसे लम्बी नदी है। इसका प्रभाव-क्षेत्र देश के कुल क्षेत्रफल के एक-चौथाई के बराबर है। इस क्रम में दूसरे स्थान पर गोदावरी नदी है। यह देश के कुल क्षेत्रफल के लगभग 10 प्रतिशत भाग को प्रभावित करती है। दो अन्य नदियाँ जो आकार में तो अपेक्षाकृत छोटी हैं

किंतु कृषि की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं - उत्तरी भारत की "तवी" नदी तथा तथा दक्षिण भारत की "पेन्नर" (Panner) नदी है।

8.4.2 अपर्याप्त उपलब्धि की समस्या (Problem of Inadequate Availability)

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि भारत में बहुत बड़ी मात्रा में जल के अनेक स्रोत उपलब्ध हैं। किंतु बड़ी जनसंख्या के संदर्भ में जल-संसाधनों की उपलब्धि हमारी आवश्यकताओं की तुलना में कहीं कम है। उदाहरणस्वरूप, एक अनुमान के अनुसार वर्ष 2025 ई. में हमें खेती-बाड़ी के लिए सकल 210 मिलियन हेक्टेयर भूमि की आवश्यकता होगी। किंतु इसके विपरीत, 2025 ई. में हम केवल 113 मिलियन हेक्टेयर भूमि पर ही सिंचाई की सुविधाएँ उपलब्ध करवा सकेंगे। अर्थात केवल 52 प्रतिशत भूमि में ही सिंचाई की सुविधा उपलब्ध होगी और शेष भाग इससे वंचित रहेगा। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि देश में जल की आवश्यकताएँ निरंतर बढ़ रही हैं तथा इनकी आपूर्ति उस अनुपात में नहीं बढ़ाई जा सकती, यह आवश्यक है कि हम उपलब्ध जल-संसाधनों के उपयोग के लिए समुचित योजना तैयार करें और जहाँ तक सम्भव हो, इन संसाधनों को अपव्यय होने से बचाया जाए।

8.5 वनीय संसाधन (FOREST RESOURCES)

आर्थिक विकास में वनीय संसाधन बहु-आयामीय भूमिका निभाते हैं। वन उद्योगों, रक्षा, संचार, घरेलू तथा अन्य सार्वजनिक कार्यों के लिए जरूरी कच्चा माल प्रदान करते हैं। निर्यातों में वनों का योगदान है तथा प्राथमिक, विनिर्माण एवं सेवा क्षेत्र में रोजगार प्रदान करने में वन महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वनों से किसानों को लकड़ी, चारा, ईंधन आदि मिलते हैं। वन्य जीवों के पालन तथा उर्वरता बनाए रखने में वनों की उपयोगिता को भी स्वीकृत किया जाता है। वनों के अनगिनत लाभ हैं जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं :

1) पेड़ों के अनेक विविध प्रयोग संभव हैं। इसलिए इन्हें बहुत महत्व का प्राकृतिक संसाधन समझा जाता है। पेड़ प्रकाश-संश्लेषण (photo-synthesis) क्रिया द्वारा सौर शक्ति को विभिन्न परोक्ष प्रकार की शक्तियों में बदल देते हैं जैसे खाद्यान्न, ईंधन, तेल और तेल उत्पाद, उद्योगों के लिए कच्चा माल आदि। इन सभी का प्रयोग किसी न किसी रूप में हम सब करते हैं।

2) पेड़ों और झाड़ियों के मिश्रित झुंड से वर्षा आकर्षित होती है। ये झुंड भू-क्षरण को नियंत्रित रखते हैं तथा मिट्टी और पर्यावरण दोनों में जल-वाष्प बनाए रखने में सिद्ध होते हैं। इस क्रिया द्वारा रेगिस्तान की चाल पर काबू पाया जा सकता है। खाद्यान्न एवं कृषि संस्था की ट्रॉपिकल क्षेत्रों के वन संसाधनों के बारे में रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि वन संसाधन इन क्षेत्रों में वन्य-जीव, मिट्टी, जल तथा जलवायु पर अनुकूल और गहरा प्रभाव डालते हैं।

3) समाज का गरीब वर्ग अनेक तरीकों से वनों द्वारा लाभान्वित होता है। वस्तुतः वह अपनी जीविका के लिए इन्हीं पर निर्भर रहता है। वनों से उसे ईंधन प्राप्त होता है। इसी प्रकार इमारती सुविधाओं के लिए इमारती लकड़ी भी वनों द्वारा ही प्राप्त होती है। आहार के वास्ते वनीय पक्षियों और पशुओं का शिकार किया जाता है, आदि।

4) वन शुद्ध ऑक्सीज़न गैस की आपूर्ति करते हैं जोकि स्वच्छ पर्यावरण की एक अनिवार्य शर्त है।

5) उपरोक्त सबके अलावा, वनों के अनेक परोक्ष लाभ भी हैं। उपलब्ध अनुमानों के अनुसार वनों पर किए गए प्रत्यक्ष निवेश से प्राप्त प्रतिफल अनेक अन्य निवेशों के प्रतिफलों से कहीं अधिक पाए गए। यह सिद्ध किया जा चुका है कि यदि उप-हिमालय क्षेत्र में एक खण्ड भूमि पर साल वन लगाए जाएँ तो इनसे प्रति वर्ष प्रतिवृक्ष 4,500 रुपए की आय प्राप्त हो सकती

है जबकि किसी अन्य फसल की खेती से प्रतिवृक्ष 2,500 रुपए आय की ही अपेक्षा की जा सकती है। इस तरह के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं।

6) वन रोज़गार सृजन के भी महत्वपूर्ण साधन हैं। सन 1976 में राष्ट्रीय कृषि आयोग ने यह अनुमान लगाया था कि यदि इनके द्वारा सिफारिश किए गए कार्यक्रम को लागू किया जाए तो वनों में 150 लाख पुरुष-दिनों या 25 लाख पुरुष-वर्षों के लिए अतिरिक्त रोज़गार के अवसरों का निर्माण किया जा सकता है। इसके अलावा, वनों द्वारा परोक्ष रोज़गार के अवसरों का भी निर्माण होता है। सबसे बड़े महत्व की बात है कि रोज़गार के ये अवसर पहाड़ी इलाकों और ग्रामीण क्षेत्रों में जहाँ इनकी सबसे अधिक आवश्यकता है, निर्मित होंगे।

संक्षेप में, वन विभिन्न आयामों में व्यक्ति और राष्ट्रीय जीवन पर गहरी छाप छोड़ते हैं। यही कारण है कि वनीय संसाधनों को अति-महत्व के संसाधन समझा जाता है।

8.5.1 वर्तमान स्थिति (Present Position)

भारत में वनों के अंतर्गत लगभग 752.9 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल है जो देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 19 प्रतिशत भाग है। इनमें से 389 लाख हेक्टेयर उपयोग के लिए उपलब्ध है जोकि कुल वन-क्षेत्र का लगभग 52.0 प्रतिशत है। इसके अलावा, 160 लाख हेक्टेयर अतिरिक्त क्षेत्रफल (21.5 प्रतिशत) उपयोग के योग्य तैयार किया जा सकता है। इन वनों से अनेक प्रकार के प्रमुख और गौण पदार्थ प्राप्त होते हैं। प्रमुख उत्पादों में ईंधन, व्यावसायिक एवं औद्योगिक लकड़ी को शामिल किया जाता है। गौण उत्पाद की श्रेणी में विविध वस्तुएँ शामिल की जा सकती हैं जैसे गोंद, औषधियाँ, राल आदि। वर्ष 1997-98 में जिसके बारे में नवीनतम आंकड़े उपलब्ध हैं, वनों से 157 लाख घन मीटर (M3) लकड़ी प्राप्त हुई जिससे राज्य वन विभागों को 353 करोड़ रुपए रॉयल्टी के रूप में प्राप्त हुए। इसके अलावा, राज्य वन विभागों को 113.2 करोड़ रूपए गौण पदार्थों के उत्पादन पर रॉयल्टी के रूप में प्राप्त हुए।

8.5.2 वनों की अपर्याप्त एवं कटाई की समस्या (Problem of Inadequacy and Deforestation)

भारत में वनों का क्षेत्रफल न केवल अन्य देशों जैसे जापान (67%), स्वीडन (68%), कनाडा (49%), ब्राजील (65%) तथा यू.एस.ए. (32%) की तुलना में कम है अपितु राष्ट्रीय वन नीति, 1952 द्वारा निर्धारित क्षेत्रफल जोकि कुल क्षेत्र का 33% से भी कम है। भारत में प्रति व्यक्ति वन भूमि का क्षेत्र 0.08 हेक्टेयर है जबकि विश्व में यह औसत क्षेत्र 2.08 हेक्टेयर है।

बढ़ती हुई जनसंख्या एवं आर्थिक वृद्धि के परिप्रेक्ष्य में चिंता का विषय यह है कि वन संपदा पर दबाव निरंतर बढ़ रहा है। उत्तरोत्तर वर्षों में भूमि को खाली करने और इस प्रकार उसे गैर वन क्षेत्रों में बदलने हेतु वृक्षों की कटाई बढ़ी है। इस प्रक्रिया को गैर-वनीकरण (deforestation) कहते हैं और इसके कारण मनुष्य की आवश्यकता तथा उसका लालच दोनों ही हैं। इस सबका कुल परिणाम यह रहा है कि पंचवर्षीय योजनाओं में सघन प्रयासों के बावजूद वनों के अंतर्गत क्षेत्रफल की वृद्धि संभव नहीं हो पाई है। साथ ही, भारतीय वनों की उत्पादकता (प्रति हेक्टेयर 1.2 क्यूबिक मीटर) विश्व औसत उत्पादकता (प्रति हेक्टेयर 2.1 क्यूबिक मीटर) की तुलना में काफी कम है।

भविष्य में वन उत्पादों की माँग में तेजी से बढ़ने की संभावना है। औद्योगिक तथा ईंधन के लिए धरेलू माँग 1985 में क्रमशः 35.18 लाख घनफुट मीटर तथा 202 लाख घनफुट मीटर थी। राष्ट्रीय कृषि आयोग के अनुसार, सन 2000 तक औद्योगिक क्षेत्र के लिए लकड़ी की माँग 64.45 लाख घनफुट मीटर हो जाएगी। यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय वन नीति की विस्तृत समीक्षा की जाय।

भारत की वन-संबंधी स्थिति अनेक दृष्टियों से संतोषजनक नहीं कही जा सकती। इसके निम्नलिखित कारण हैं :

1) आवश्यकता की तुलना में वनों का अभाव। विशेषज्ञों के अनुसार, भारत जैसे देश में जहाँ की जलवायु गर्म है, वर्षा अनिश्चित है और अर्थव्यवस्था कृषि-प्रधान है, कुल भूमि के लगभग

एक-तिहाई भाग में वन होने चाहिए। लेकिन हमारे यहाँ यह अनुपात 19 प्रतिशत के लगभग है। इस कमी का मोटा अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि प्रति व्यक्ति वन का क्षेत्रफल रूस में 3.5 हेक्टेयर और अमेरिका में 1.8 हेक्टेयर है जबकि भारत में यह मात्र 0.2 प्रतिशत है।

2) देश में वन-क्षेत्र का वितरण बहुत असमान है।

3) देश के कुछ वन बहुत ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों पर स्थित होने के कारण मनुष्य की पहुँच से बाहर हैं।

4) वैज्ञानिक प्रबंध एवं आधुनिक तौर-तरीकों के अभाव में हमारे वनों की उत्पादकता भी अपेक्षाकृत बहुत कम है।

वनों में अपर्याप्त उपलब्धि का सबसे भयंकर परिणाम प्रत्यक्ष रूप से वनों को ही तथा परोक्ष रूप से समस्त समुदाय को झेलने पड़ते हैं। चूँकि वनीय उत्पादों की माँग एवं वनीय भूमि की गैर-वनीय उपयोगों में माँग निरंतर बढ़ रही है, परिणामस्वरूप वनीय क्षेत्रों की मनमानी ढंग से सफाई की जाती रही है। वनीय क्षेत्र का अनुपात बराबर कम होता जा रहा है। इस परिवेश में लकड़ी तथा अन्य वन्य-जन्य पदार्थों की बढ़ती माँग को पूरा करने के लिए आयोजनबद्ध तरीके से प्रयास करने होंगे। ऐसी वन-नीति का निर्माण करना होगा जोकि अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं के अनुकूल हो।

8.5.3 राष्ट्रीय वन नीति, 1952

सबसे पहले सन 1952 में सरकार द्वारा राष्ट्रीय वन नीति की घोषणा की गई। सन 1988 में इस नीति में कुछ संशोधन किए गए।

1952 की वन नीति में निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान दिया गया था :

1) भू-उपयोग की एक संतुलित एवं पूरक व्यवस्था का निर्माण करना

2) पहाड़ी क्षेत्रों के कटाव को रोकना, बड़ी नदियों के पेड़-रहित किनारों पर मृदा-कटाव को रोकना तथा तटीय क्षेत्रों में भूमि-क्षरण को रोकने की आवश्यकता,

3) जहाँ कहीं संभव बन पाए, पेड़ों का लगाया जाना

4) पशुओं के लिए चरागाह और खेती के औज़ारों तथा ईंधन की आपूर्ति के लिए लकड़ी की समुचित व्यवस्था करना,

5) उद्योग, सुरक्षा, परिवहन आदि के लिए लकड़ी तथा अन्य वन-पदार्थों की नियमित आपूर्ति की व्यवस्था करना,

6) राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखते हुए यथासंभव वनों के प्रयोग से आगम प्राप्त करने पर बल देना।

उपरोक्त आधार पर तैयार की गई नीति के अनुसार पंचवर्षीय योजनाओं में वन-विकास की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाए गए। किंतु, हम वन-सम्पदा को नष्ट होने से बचाने में असमर्थ रहे। बड़े पैमाने पर पेड़ों को काटा जाता रहा है तथा दूसरी तरह से भी वनों को नुकसान पहुँचाया जाता रहा है। वास्तविकता यह है कि वनों के अंतर्गत क्षेत्रफल में कमी ही होती रही है, किसी तरह का सुधार नहीं। इस बात को ध्यान में रखकर सरकार ने दिसम्बर, 1988 में नई वन विकास नीति की घोषणा की।

8.5.4 राष्ट्रीय वन नीति, 1988

नई वन नीति 1952 की नीति से निम्न रूपों में अलग है :

1) नई वन नीति में वनों के संरक्षण पर तथा जनजातियों और ग्रामवासियों की जरूरतों को पूरा करने पर अधिक बल दिया गया है। 1952 की नीति में इसके विपरीत नए वनों के लगाए

इसी प्रकार, पुरानी नीति में राष्ट्रीय आवश्यकताओं को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई थी तथा इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया गया था कि जहाँ कहीं राष्ट्रीय हितों और स्थानीय महत्व के हितों में विरोध प्रकट होगा राष्ट्रीय हितों को प्राथमिकता दी जाएगी। किंतु, अब इस बात का एहसास किया जा रहा है कि वनों को तब तक संरक्षण नहीं प्रदान किया जा सकता जब तक कि स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वैकल्पिक प्रबंध नहीं कर लिए जाते। नई नीति में इस बात के प्रावधान किए गए हैं। यह स्पष्ट किया गया है कि वन-सम्पदा के प्रथम अधिकारी स्थानीय लोग एवं आदिवासी होंगे तथा वे अपनी लकड़ी, कच्चे माल, पशुओं के लिए चारे आदि के लिए बिना रोक-टोक के वनों में जा सकेंगे। यह भी स्पष्ट किया गया है कि पेड़ों के लगाने, संरक्षण एवं काटने आदि के काम में स्थानीय लोगों से अधिक योगदान की अपेक्षा की जाएगी। इस वास्ते सहकारी समितियों तथा अन्य सरकारी संस्थाओं की स्थापना की जाएगी। ये संस्थाएं वर्तमान ठेकेदारी प्रणाली की जगह लेंगी।

2) वन नीति, 1988 का अन्य महत्वपूर्ण पहलू कच्चे माल की आपूर्ति से संबध रखता है। यह समझा गया है कि ऐसे उद्योगों के बेरोक-टोक विकास से जोकि अपने कच्चे माल की आपूर्ति के लिए वनों पर ही निर्भर रहते हैं वन-सम्पदा की बहुत हानि हुई है। अब नई नीति में निम्न बातों पर ज़ोर दिया गया है :

   i) लघु एवं कुटीर उद्योगों को छोड़कर किसी ऐसे वन-आधारित उद्योग की स्थापना की अनुमति नहीं दी जाएगी जिसने अपने कच्चे माल की आपूर्ति के लिए अलग से समुचित प्रबंध न किए हों।

   ii) जहाँ तक संभव हो, वन-आधारित उद्योग स्वयं ही अपने उपयोग के लिए आवश्यक कच्चे माल का उत्पादन करेंगे।

   iii) वनीय क्षेत्रों में बागान आदि की स्थापना की स्वीकृति नहीं दी जाएगी।

   iv) वन उत्पादों की आपूर्ति रियायती दरों पर नहीं की जाएगी।

स्पष्ट रूप से नई वन नीति का प्रमुख उद्देश्य वन सम्पदा को संरक्षण प्रदान करना तथा आगे नष्ट होने से बचाना है।

बोध प्रश्न 2

1) भारत में जल संसाधनों के प्रमुख स्रोतों का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारत में नदियों की प्रमुख प्रणालियाँ कौन-कौन सी हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) अर्थव्यवस्था के लिए वनों के प्रमुख लाभों का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4) सन 1952 और 1988 की वन नीति में क्या प्रमुख भेद हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

8.6 खनिज संसाधन (MINERAL RESOURCES)

आधुनिक विकसित अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए विविध खनिज पदार्थों की उपलब्धता आवश्यक है। **जियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया (Geological Survey of India)** के अनुसार भारत में इस समय 50 तरह के महत्वपूर्ण खनिज 400 प्रमुख स्थलों पर उपलब्ध हैं। उपलब्ध खनिजों को हम चार प्रमुख वर्गों में विभाजित कर सकते हैं :

i) ऐसे खनिज जिनका भारत सबसे बड़ा निर्यातक देश है, जैसे लौह-चूर्ण (iron-ore) एवं अभ्रक।

ii) ऐसे खनिज जिनका बड़ी मात्रा में निर्यात किया जाता है, जैसे मैगनीज-चूर्ण, बॉक्साइट, जिप्सिम आदि।

iii) ऐसे खनिज जिनकी आपूर्ति देश की आवश्यकताओं के अनुरूप पर्याप्त है, जैसे कोयला, सोडियम साल्ट, शीश-रेत आदि।

iv) ऐसे खनिज जिनकी घरेलू आवश्यकताओं की आपूर्ति आयात द्वारा की जाती है जैसे ताँबा, निक्कल, पैट्रोलियम, सिक्का, जिंक, टिन, प्लेटिनम, ग्रेफाइट आदि।

इनके स्वरूप तथा अंतिम उपयोग के आधार पर खनिज पदार्थों को निम्न तीन श्रेणियों में भी वर्गीकृत किया जा सकता है :

i) ईंधन जैसे कोयला, लिग्नाइट, प्राकृतिक गैस, पेट्रोलियम आदि।

ii) धातु-खनिज जैसे बॉक्साइड, लौह-चूर्ण आदि।

iii) गैर-धातु जैसे अभ्रक, चूना, जिप्सम, ग्रेफाइट आदि।

योजनावधि में खनिज उत्पादन के मूल्य में उत्साहवर्धक वृद्धि हुई है, जैसा कि तालिका-2 में प्रस्तुत आंकड़ों से स्पष्ट है :

तालिका-2 : भारत में खनिज उत्पादन का मूल्य

(करोड़ रुपए)

वर्ष	उत्पादन-मूल्य
1951	83.30
1961	81.20
1971	502.91
1975	1227.40
1980	2310.00
1985	9122.00
1990	16456.00
1992-93	20180.00
1993-94	24554.00
1994-95	27940.00
1995-96	28350.00
1996-97	31185.00

स्रोत : India Annual Reference Year Book.

तालिका-2 से स्पष्ट है कि योजनावधि के दौरान खनिज उत्पादन में कई गुना वृद्धि हो चुकी है। विभिन्न खनिज उत्पादों में उत्पादन-मूल्य की दृष्टि से ईंधन खनिज सर्वोपरि महत्व के उत्पाद हैं। कुल खनिज उत्पादन का लगभग 85 प्रतिशत भाग हमें ईंधन के रूप में प्राप्त होता है। ईंधन वर्ग के उत्पादों में कोयले एवं पेट्रोलियम का ऊंचा स्थान है। केवल कोयले के उत्पादन द्वारा ही समस्त खनिज उत्पादन के 55 प्रतिशत भाग की आपूर्ति की जाती है। धातु खनिजों एवं गैर-धातु खनिजों में प्रत्येक वर्ग का कुल खनिज उत्पादन में योगदान 6 से 7 प्रतिशत रहा है।

खनिज संसाधन अर्थव्यवस्था के तीव्र औद्योगीकरण का आधार प्रस्तुत करते हैं। नए आर्थिक कार्यक्रम के अंतर्गत बाज़ार की शक्तियों की भूमिका बढ़ने के साथ-साथ औद्योगीकरण की संभावनाएँ भी बढ़ गई हैं। परिणामस्वरूप, अर्थव्यवस्था में खनिज-पदार्थों की माँग में भी वृद्धि अपेक्षित है। इसलिए यह आवश्यक है कि इनके प्रयोग के बारे में सुविचारित नीति अपनाई जाए। इस तरह के नीति-निर्माण में निम्न पहलुओं पर विशेष ध्यान देना होगा :

1) खनिज संसाधनों की उपलब्धता में भारी क्षेत्रीय विषमताएँ पाई जाती हैं। उत्तरी भारत के मैदानी इलाकों में लगभग किसी तरह के खनिज नहीं पाए जाते। दूसरी ओर, दक्षिणी बिहार और उड़ीसा एवं उत्तरी-पूर्वी क्षेत्रों में खनिजों के भारी भण्डार हैं। इसी तरह, असम एवं राजस्थान में भी खनिजों के भण्डार पाए जाते हैं।

2) देश में कच्चे तेल या पेट्रोलियम आदि खनिजों का अभाव है। इन पदार्थों की घरेलू माँग के बड़े हिस्से की आपूर्ति इनके आयात द्वारा की जाती है। चूँकि इन खनिजों की अंतर्राष्ट्रीय बाज़ारों में कीमतें निरंतर बढ़ती जा रही हैं, इसलिए यह आवश्यक है कि एक ओर तो इनके बढ़ते प्रयोग पर रोक लगाई जाए तथा साथ ही इनके घरेलू रिज़र्वों की खोज के काम को तेज़ किया जाए।

3) हमारे यहाँ कुछ ऐसे खनिज भी हैं जिनके निर्यात से हम भारी मात्रा में विदेशी मुद्रा कमा पाते हैं। इस पहलू की ओर भी हमें ध्यान देना चाहिए।

4) वित्तीय साधनों के अभाव में खनन उद्योग में विकसित आधुनिक तकनीकों का प्रयोग संभव नहीं हो पा रहा है।

8.6.1 नई खनिज नीति, 1993 (New Mineral Policy)

राष्ट्रीय खनिज नीति की घोषणा 9 अगस्त, 1990 को की गई थी। 5 मार्च, 1993 को इस नीति में कुछ संशोधनों की घोषणा की गई। इन संशोधनों के साथ खनिज नीति के समक्ष निम्न उद्देश्य रखे गए थे :

i) खनिजों के संरक्षण एवं विकास में संतुलन बनाए रखना,

ii) अर्थव्यवस्था की समस्त आवश्यकताओं की आपूर्ति के वास्ते खनिजों की पूर्ति की निरंतरता को बनाए रखने के लिए उचित अनुबंधों (linkage) की व्यवस्था,

iii) खनन विकास के वनों, पर्यावरण एवं प्राकृतिक संतुलन पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों पर नियंत्रण रखने के प्रयास करना तथा इसके लिए आवश्यक सुरक्षा के उपाय अपनाना,

iv) खनिज संसाधनों के भावी विकास के वास्ते योजनाबद्ध कार्यक्रमों में इन पदार्थों की वर्तमान और भविष्य, दोनों ही आवश्यकताओं पर पूरा ध्यान देना।

v) खनन उद्योग के प्रशिक्षित कर्मचारियों की आपूर्ति के लिए मानवीय संसाधन विकास कार्यक्रमों का आयोजन करना जिससे कि शिक्षा एवं प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था की जा सके।

विशेषताएँ : खनिज नीति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

1) खनिज तेल एवं यूरेनियम को छोड़कर बाकी समस्त खनन उद्योग में निजी पूँजी एवं उपक्रम के प्रवेश को छूट दी गई है। पहले जो 13 खनिज सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित रख छोड़े गए थे उनमें अब निजी उपक्रमी प्रवेश पा सकेंगे। ये खनिज हैं - लौह-चूर्ण, मैगनीज, क्रोम, सल्फर, सोना, हीरा, ताँबा, सिक्का, जस्ता, मोलिबडेनम, टेनस्टेन, निकल एवं प्लेटिनम।

2) विदेशी कम्पनियों द्वारा निवेश की जाने वाली राशि की ऊपरी सीमा अब बढा दी गई है। वे अब इस क्षेत्र में काम कर रही भारतीय कम्पनियों की कुल अंश पूँजी में 50 प्रतिशत तक का योगदान दे सकती हैं।

3) वे कम्पनियाँ जो अपने उत्पादन के लिए निजी खानों का विकास करना चाहती हैं, उन्हें भी विदेशी कम्पनियों से सहयोग प्राप्त करने की छूट दे दी गई है।

4) वनीय क्षेत्रों में खनन की खुली छूट नहीं दी जाएगी। ऐसे क्षेत्रों में खनन की स्वीकृति केवल उसी परिस्थिति में दी जाएगी जबकि कम्पनियाँ भूमि की पुनर्स्थापना की जिम्मेदारी लेंगी।

5) जब तक पर्यावरण संबंधी स्वीकृतियाँ प्राप्त नहीं कर ली जाएंगी, किसी भी खनन की परियोजना को मंजूरी नहीं दी जाएगी।

6) भारत सागर में सतह की खनन विधियों को स्वीकृति नहीं दी जाएगी।

8.6.2 नई आर्थिक नीति एवं निजीकरण (New Economic Policy and Privatisation)

आर्थिक उदारीकरण के आने के साथ खनन के सभी क्षेत्रों में घरेलू एवं विदेशी निजी पूँजी के खुले प्रवेश की माँग निरंतर बढ़ती जा रही थी। किंतु Mines and Minerals Regulation and Development Act में विदेशी नागरिकों और कम्पनियों की मुक्त प्रवेश पर अनेक तरह की रूकावटें लगा रखी थीं। दूसरी ओर, ऊर्जा निर्माण में सहयोग देने वाली कम्पनियाँ बराबर इस बात की माँग करती आ रही थीं कि जब तक वे अपनी कोयले की खानों का निर्माण नहीं कर लेतीं, कोयले की निरंतर आपूर्ति के बारे में वे आश्वस्त नहीं हो सकतीं। इन माँगों पर विचार करने के बाद 25 जनवरी, 1994 को जारी एक अध्यादेश के अनुसार, इस अधिनियम (Act) में आवश्यक

संशोधन कर दिए गए हैं और अब निजी घरेलू एवं विदेशी पूँजी तथा उपक्रम खनन उद्योग में प्रवेश करने के लिए मुक्त हैं।

बोध प्रश्न 3

निम्नलिखित प्रश्नों में सही उत्तर के सामने सही (√) का निशान लगाएँ :

1) भारत के पास इस खनिज के निर्यात-योग्य अतिरेक उपलब्ध है :

   क) अभ्रक

   ख) कच्चा तेल

   ग) सोना

   घ) ताँबा

2) भारत इस खनिज में आत्मनिर्भर है :

   क) पेट्रोलियम

   ख) मर्करी

   ग) बॉक्साइट

   घ) टिन

3) इनमें से विचित्र (odd) को अलग निकालें :

   क) बॉक्साइट

   ख) लौह-चूर्ण

   ग) मैगनीज

   घ) अभ्रक

4) इनमें से विचित्र (odd) को अलग निकालें :

   क) जिप्सम

   ख) ताँबा

   ग) लौह-चूर्ण

   घ) शीश-रेत

8.7 ऊर्जा संसाधन (ENERGY RESOURCES)

आर्थिक विकास प्रक्रिया में ऊर्जा संसाधन सर्वोपरि महत्व की भूमिका निभाते हैं। एक ओर तो ऊर्जा की सहायता से समस्त विकास प्रक्रिया को चलाए रखना संभव हो पाता है और दूसरी ओर जीवन की सामान्य आवश्यकताओं की आपूर्ति भी ऊर्जा द्वारा ही संभव होती है। वस्तुतः यदि हम विचार करें तो हम पाते हैं कि यह ऊर्जा की उपलब्धि ही है जो एक विकसित अर्थव्यवस्था को एक निर्वाहशील (subsistence) अर्थव्यवस्था से भिन्न करती है। औसत एक अमरीकी नागरिक द्वारा एक औसतन भारतीय नागरिक की तुलना में 40 गुना ऊर्जा का उपयोग किया जाता है।

भारत में ऊर्जा का निर्माण विभिन्न साधनों द्वारा किया जाता है। इन साधनों को हम दो भागों में बाँट सकते हैं :

i) व्यावसायिक साधन जैसे उष्मीय ऊर्जा, जल से प्राप्त ऊर्जा, तेल से प्राप्त शक्ति, गैस, परमाणु आदि; एवं

ii) गैर-व्यावसायिक साधन जैसे लकड़ी, गोबर आदि।

स्पष्ट रूप से इन दोनों वर्गों में से व्यावसायिक साधनों की भूमिका अपेक्षाकृत बहुत अधिक है।

8.7.1 वाणिज्यिक संसाधन (Sources of Commercial Energy)

क) **कोयला (Coal)**

कोयला एक प्राकृतिक देन है तथा भारत में बिजली उत्पादन का प्रमुख साधन है। वर्तमान में भारत में बिजली का जितना उत्पादन होता है उसका लगभग 74 प्रतिशत भाग कोयले से चलने वाले बिजली-घरों से मिलता है। सरकार की नीति भी यही है कि जहाँ तक संभव होगा, कोयले को ही बिजली उत्पादन के प्रमुख स्रोत के रूप में प्रयोग में लाया जाता रहेगा।

भारत में कोयले उत्पादन का क्षेत्र बंगाल के पश्चिमी भाग से आरंभ होते हुए, पश्चिमी बिहार, उड़ीसा, उत्तर-पूर्वी मध्य प्रदेश से होता हुआ आंध्र प्रदेश के पूर्वी भाग तक फैल जाता है। इसके अलावा, असम में भी कहीं-कहीं कोयले का उत्पादन होता है। देश में उपलब्ध कोयले के भण्डारों के बारे में लगाए अनुमानों से यह स्पष्ट होता है कि भारत में लगभग 193.8 बिलियन टन कोयले के रिज़र्व उपलब्ध हैं। इनमें से लगभग 27 प्रतिशत पत्थरी कोयला (Coking variety) है और शेष 73 प्रतिशत गैर-पत्थरी कोयला (Non-coking variety) के रिजर्व हैं। सीमित उपलब्धता के कारण पत्थरी कोयले का प्रयोग धातु उद्योगों तक ही सीमित रखा गया है जबकि गैर-पत्थरी कोयले का प्रयोग बिजली उत्पादन में किया जाता है।

इसके अलावा, भारत में भूरे कोयले (lignite) और प्रमूल कोयले (tertiary) के भण्डार भी उपलब्ध हैं। भूरे कोयले के लगभग 21000 मिलियन टन के भण्डार उपलब्ध हैं जबकि प्रमूल कोयले के 900 मिलियन टन के भण्डार उपलब्ध हैं।

देश में सन 1950-51 में कोयले का कुल उत्पादन 33.9 मिलियन टन के लगभग था। वर्ष 1997-98 में यह बढ़कर 295.9 मिलियन टन हो चुका है। भारत में कोयले की आवश्यकता के बारे में यह अनुमान लगाए जा रहे हैं कि सन 2000 ई. में हमें 400 मिलियन टन कोयला उपलब्ध करवाना होगा। इसका तात्पर्य यह है कि आने वाले वर्षों में कोयले की आपूर्ति बढ़ाने के लिए हमें भरसक प्रयास करने होंगे।

कोयला उद्योग के विकास के रास्ते में सबसे बड़ी अड़चन परिवहन सेवाओं का अभाव है। कोयले का लगभग सारा आवागमन रेल द्वारा किया जा रहा है। रेल डिब्बों की अनुपलब्धि की परिस्थिति में कोयला-खानों के पास कोयले के भण्डार जमा होने लग जाते हैं, जबकि उन क्षेत्रों और उद्योगों में जहाँ कोयले की खपत की जाएगी, कोयला उपलब्ध नहीं हो पाता है। सरकार को इस ओर प्राथमिकता के आधार पर ध्यान देना होगा।

ख) **तेल (पेट्रोलियम) (Oil, Petroleum)**

बीसवीं शताब्दी के दूसरे आधे भाग को हम तेल के युग की संज्ञा दे सकते हैं। सन 1950 में समस्त विश्व द्वारा मात्र 650 मिलियन टन तेल का उपयोग किया गया जबकि सन 1973 में ही यह मात्रा बढ़कर 3000 मिलियन टन हो चुकी थी। तेल उपभोग की इस बढ़ती हुई प्रवृत्ति ने तेल-उत्पादक देशों को तेल की कीमतों में चौंका देने वाली वृद्धि करने के अवसर प्रदान किए। परिणामस्वरूप, विश्व-भर में तेल का संकट उत्पन्न हो गया। भारत भी इस संकटीय स्थिति का एक हिस्सा था। इस संकट का एक सुखद परिणाम यह हुआ कि तेल के भण्डारों की खोज के काम को गति मिली और हम इस काम में एक-साथ जुट गए। तेल की खोज भू-तल के नीचे और समुद्रीय क्षेत्रों, दोनों में की जाने लगी।

रिज़र्व एवं उत्पादन (Reserves and Production) : उपलब्ध अनुमानों के अनुसार, भारत के पास तेल के 993.0 मिलियन टन रिज़र्व उपलब्ध हैं। ये रिज़र्व असम, गुजरात, बम्बई समुद्रीय

क्षेत्र, अरूणाचल प्रदेश एवं तमिलनाडु के कुछ क्षेत्रों में पाए जाते हैं। बम्बई के समुद्रीय क्षेत्रों से देश में कुल तेल उत्पादन का लगभग 70 प्रतिशत भाग प्राप्त होता है। इसी तरह, तेल की सफल खोज के परिणामस्वरूप तेल उत्पादन के नऐ स्रोतों के बारे में भी जानकारी मिली है।

देश में आठवें दशक के गैरान तेल के उत्पादन में उत्साहवर्धक वृद्धि हो रही थी, किंतु नवें दशक के प्रारंभिक चरण में तेल उत्पादन में गिरावट आई। हालाँकि वर्ष 1993-94 के गैरान तेल उत्पादन में सुधार हुआ है, किंतु पुनः इसमें गिरावट आई (जैसा कि तालिका-3 में दर्शाया गया है) :

तालिका-3 : कच्चे तेल का उत्पादन

(मिलियन टन)

वर्ष	उत्पादन की मात्रा
1960-70	4516.8
1979-80	1170.0
1984-85	29000.0
1989-90	34090.0
1993-94	32200.0
1994-95	32200.0
1995-96	35200.0
1996-97	32900.0
1997-98	33900.0

ग) प्राकृतिक गैस (Natural Gas)

प्राकृतिक गैस को कार्बनों के युवराज (Prince of Carbons) की उपाधि भी दी जाती है। प्राकृतिक गैस पेट्रोलियम उत्पादन के साथ ही प्राप्त हो सकती है, अन्यथा इसका उत्पादन अलग से भी किया जा सकता है। जब भूमिगत तेल को बाहर सींचा जाता है तो इसी प्रक्रिया में गैस भी उठती है। इस गैस को समेटा जाता है और उपयोग के योग्य बनाया जाता है। स्पष्ट रूप से कच्चे तेल के उत्पादन की मात्रा पर ही गैस के उत्पादन की मात्रा भी निर्भर रहेगी। इसके विपरीत, जब गैस का उत्पादन अलग से किया जाता है तो इसके उत्पादन की मात्रा को भी स्वतंत्र रूप से निर्धारित किया जा सकता है।

ऊर्जा के साधन के रूप में गैस में सुविधा एवं कुशलता के गुण पाए जाते हैं। प्राकृतिक गैस प्राकृतिक पर्यावरण के भी अनुकूल होती है।

प्राकृतिक गैस का घरेलू एवं औद्योगिक, दोनों ही क्षेत्रों में प्रयोग किया जाता है। उर्वरक एवं पेट्रो-रसायन (petrochemical) उद्योग गैस के प्रमुख उपभोक्ता माने जाते हैं। हालांकि अतीत में गैस का प्रयोग केवल इन्हीं दो उद्योगों तक आरक्षित कर दिया गया था किंतु इधर पिछले कुछ वर्षों के दौरान गैस की आपूर्ति एवं माँग में हुए भारी परिवर्तनों के कारण परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं।

उत्पादन एवं उपभोग (Production and Consumption)

सन 1955 में **तेल और प्राकृतिक गैस आयोग (ONGC)** की स्थापना के बाद राष्ट्रीय स्तर पर गैस की खोज का काम आरंभ किया गया। देश के विभिन्न भागों में गैस के भारी रिज़र्वों के बारे में जानकारी मिल चुकी है। विशेष रूप से असम, बम्बई के समुद्रीय क्षेत्र, दक्षिण के कुछ भाग, कृष्णा-गोदावरी तटीय क्षेत्र, जैसलमेर, त्रिपुरा, बंगाल आदि इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। गैस के

वर्तमान रिज़र्व 1154 मिलियन टन (तेल के बराबर) अनुमानित हैं। अतीत में गैस के उत्पादन में धीमी वृद्धि ही हो पाई। 1974-75 में जहाँ 2.1 बिलियन घन मीटर गैस का उत्पादन किया गया, वर्ष 1980-81 में इसकी मात्रा केवल 1.8 बिलियन घन मीटर ही थी। किंतु, इसके बाद से गैस के उत्पादन एवं उपभोग में भारी वृद्धि हुई है। वर्ष 1997-98 में गैस का कुल उत्पादन 24.80 बिलियन टन हुआ।

अर्थव्यवस्था में गैस के बढ़ते उपयोग को देखते हुए सरकार ने **गैस ऑथरिटी ऑफ इण्डिया** - गैल (Gas Authority of India Limited) की स्थापना की है। इस संगठन को गैस के उत्पादन, परिवहन एवं बाज़ार में बिक्री की जिम्मेदारी सौंपी गई है। गेल ने देशव्यापी सबसे बड़ी पाइपलाइन जिसे एच बी जे परियोजना कहते हैं, को 1700 करोड़ रुपए की लागत से पूरा किया, जो तीन गैस आधारित उर्वरक संयंत्र पाइप लाइनों के साथ ही क्रियाशील है।

घ) हाइड्रो-पॉवर (Hydro-power)

देश में बिजली-उत्पादन के क्षेत्र में हाइड्रो-पॉवर की महत्वपूर्ण भूमिका है। कुल बिजली-उत्पादन में इस साधन द्वारा 20 प्रतिशत का योगदान रहा है। 1953-59 की अवधि में **सेण्ट्रल वाटर एण्ड पॉवर कमीशन** द्वारा देश में उपलब्ध हाइड्रो-पॉवर संसाधनों का एक सर्वेक्षण किया गया था। इस सर्वेक्षण से पता चला है कि देश में इस समय 25.26 बिलियन किलोवाट क्षमता के अर्थपूर्ण उपयोग-योग्य हाइड्रो-पॉवर संसाधन उपलब्ध हैं जिनके द्वारा 221 बिलियन किलोवाट बिजली का प्रत्येक वर्ष निर्माण किया जा सकता है। वर्तमान में, इन संसाधनों द्वारा लगभग 72.6 बिलियन किलोवाट बिजली का उत्पादन किया जाता है।

इधर, पिछले कुछ वर्षों में हुए तकनीकी सुधार बिजली-उत्पादन के बारे में उपलब्ध नई जानकारी तथा बिजली के वैकल्पिक स्रोतों से उत्पादन-लागत तेज़ी से बढ़ती जा रही है। इससे निकट भविष्य में हाइड्रो-पॉवर संसाधन के महत्व में बहुत अधिक विस्तार हो जाने की संभावनाएँ बन आई हैं। इस वास्ते इन संसाधनों के समुचित विकास के लिए योजनाबद्ध कार्यक्रम तैयार करने होंगे।

च) नए स्रोत (New Sources)

ऊर्जा के नए स्रोतों में हम परमाणु ऊर्जा, गोबर गैस, वायु-ऊर्जा, जिथर्मल ऊर्जा आदि का उल्लेख कर सकते हैं। भारत में सन 1969 में परमाणु ऊर्जा का कार्यक्रम आरंभ किया गया। इसके बाद की अवधि में भारत परमाणु द्वारा ऊर्जा प्राप्त करने में पूरी तरह सक्षम हो गया है। वे सब योग्यताएँ एवं उपकरण हमारे यहाँ उपलब्ध हैं जिनका कि परमाणु-ऊर्जा में प्रयोग किया जाता है। परमाणु-ऊर्जा की उत्पादन क्षमता कोयले द्वारा ऊर्जा की उत्पादन-क्षमता से कहीं अधिक है।

सन 1962 में सबसे पहली बार गोबर गैस प्लाण्ट का निर्माण किया गया। वर्ष 1974-75 के बाद से इस कार्यक्रम के विस्तार पर बहुत ध्यान दिया गया। इस समय, भारत में लगभग 17 लाख गोबर-गैस प्लाण्ट काम कर रहे हैं।

सौर ऊर्जा का विविध उपयोगों जैसे पानी गर्म करने, पानी शुद्ध करने जैसे कार्यों में प्रयोग किया जा रहा है। इसी प्रकार, वायु पम्पसैट तथा पवन कृषि फार्म परियोजनाएँ, देश में ऊर्जा संकट के परिप्रेक्ष्य में अधिक प्रोत्साहित किए जा रहे हैं। इसी प्रकार, अन्य पूरक विकल्प भी तलाशे जा रहे हैं। वैकल्पिक साधनों को खोजने की प्रवृत्ति जितनी तेज होगी, भारत में ऊर्जा की स्थिति उतनी ही अधिक बेहतर होगी।

8.7.2 गैर-व्यावसायिक ऊर्जा के स्रोत (Sources of Non-commercial Energy)

ऊर्जा के गैर-व्यावसायिक स्रोतों में हम (i) जंगली लकड़ी, (ii) कृषि के बेकार पदार्थ; तथा (iii) गोबर को शामिल करते हैं। ऊर्जा नीति के विशेषज्ञ दल के अनुमानों के अनुसार, कुल गैर-व्यावसायिक ऊर्जा के उत्पादन से इन स्रोतों का योगदान क्रमशः 65 प्रतिशत, 15 प्रतिशत और 20 प्रतिशत रहा है। कुल गैर-व्यावसायिक ऊर्जा उत्पादन के लगभग 82 प्रतिशत भाग का उपयोग घरेलू क्षेत्र में कर लिया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में कुल घरेलू उपभोग में 80 प्रतिशत ऊर्जा इन स्रोतों से प्राप्त होती है जबकि शहरी क्षेत्रों में यह अनुपात 51 प्रतिशत के लगभग है।

सन 2000 ई. के बारे में उपलब्ध अनुमानों से यह पता चलता है कि ईंधन लकड़ी की माँग 111 मिलियन टन से 173 मिलियन टन के बीच रहेगी। वर्तमान में ईंधन-लकड़ी की आपूर्ति 50 से 63 मिलियन टन के बीच है। स्पष्ट रूप से देश में ईंधन लकड़ी का अभाव है। इस अभाव का सबसे ज्यादा बोझ गरीब वर्ग को सहन करना पड़ता है।

बोध प्रश्न 4

1) भारत में व्यावसायिक ऊर्जा के तीन स्रोतों का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारत में गैर-व्यावसायिक ऊर्जा के तीन स्रोतों का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3) निम्नलिखित में सही कथन चुनिए :

क) भारत कच्चे तेल के उत्पादन में आत्मनिर्भर है।

ख) भारत में पेट्रोलियम पदार्थों का उत्पादन नहीं किया जाता है।

ग) प्राकृतिक गैस को हाइड्रो-कार्बनों के युवराज के उपाधि से आभूषित किया जाता है।

घ) भारत में सौर-ऊर्जा गैर-व्यावसायिक ऊर्जा का प्रमुख साधन है।

8.8 सारांश

इस इकाई में हमने भारत में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया है। उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि भारत में विविध प्राकृतिक संसाधन पाए जाते हैं। किंतु इन संसाधनों की आपूर्ति के बारे में हमें दो बातों पर विशेष ध्यान देना होगा : (1) क्या उपलब्ध संसाधन हमारी विकास-आवश्यकताओं के संदर्भ में पर्याप्त हैं; और (2) हम उपलब्ध संसाधनों में से कितने संसाधनों का कुशल उपयोग करने में सक्षम हैं। इस दृष्टिकोण से हमारे संसाधन हमारी आवश्यकताओं से बहुत कम हैं। इसलिए हमें तत्काल ही कुछ कदम उठाने होंगे। सबसे पहले तो हमें संसाधनों की खोज का काम जारी रखना होगा जिससे कि हम अपने संसाधनों की उपलब्धि के बारे में आवश्यक जानकारी प्राप्त कर सकें। दूसरा, उपलब्ध संसाधनों के समुचित कौशल उपयोग के प्रयास करने होंगे। इस वास्ते हमें बेहतर प्रौद्योगिकी, उप-उत्पादों के प्रयोग की योजना, संसाधनों के बहु-उद्देशीय उपयोगों की संभावना आदि पर विचार करना होगा। तीसरा, हमें ऐसे कदम उठाने होंगे कि संसाधनों के उपलब्ध स्टॉकों का लम्बी अवधि तक उपयोग संभव बन पाए। अंत में, संसाधनों के समुचित प्रयोग के वास्ते प्रभावपूर्ण संस्थागत ढाँचे की व्यवस्था करनी होगी।

चूँकि आर्थिक विकास में प्राकृतिक संसाधनों को अहम भूमिका निभानी होती है, अतः उपरोक्त सभी बातों की ओर हम तटस्थ भाव से नहीं देखते रह सकते। हमें शीघ्र ही समुचित नीति का निर्माण करना होगा।

8.9 शब्दावली

एक-फसलीय क्षेत्र : वह क्षेत्र जहाँ एक वर्ष में एक ही फसल की खेती की जाती है।

निवल बोया गया क्षेत्र : एक वर्ष में खेती के अंतर्गत क्षेत्र।

निजीकरण : वह प्रक्रिया जिसके द्वारा निजी पूँजी एवं उपक्रम को आर्थिक क्रियाकलापों में प्रवेश करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

प्राकृतिक संसाधन : भूमि के ऊपर या भूमि के नीचे उपलब्ध वे सभी प्राकृतिक पदार्थ जिनको श्रम की सहायता से उपभोग-योग्य बनाया जाता है।

बहु-फसलीय क्षेत्र : वह क्षेत्र जहाँ एक वर्ष के दौरान एक से अधिक फसलों का उत्पादन किया जाता है।

भूमिगत जल : नदियों, झीलों आदि स्रोतों से प्राप्त जल।

भूमितल जल : कुएं, झरने आदि स्रोतों से प्राप्त जल।

सकल बोया गया क्षेत्र : निवल बोया गया क्षेत्र और वह क्षेत्र जिस पर एक से अधिक फसलों की खेती की गई हो।

सामाजिक वानिकी : समुदाय की आवश्यकताओं के अनुसार वनों की कटाई एवं नए वनों की वृद्धि।

8.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Ashish Bose (ed) : Population in India's Development 1947-2000

Planning Commission : Approach to the Ninth Five Year Plan

Government of India : Report of the National Commission on Agriculture

Government of India : Economic Survey (2000)

World Bank : Toward an Environmental Strategy for Asia (1993)

I.C. Dhingra : The Indian Economy, Environment and Policy (2001)

8.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) उप-भाग 8.3.1 देखें

2) उप-भाग 8.3.2 देखें

3) उप-भाग 8.3.3 देखें

4) उप-भाग 8.3.4 देखें

बोध प्रश्न 2

1) भाग 8.4 की प्रस्तावना पढ़िए।

2) उप-भाग 8.4.1 देखें

3) भाग 8.5 में से चार कारक बताइए।

4) उप-भाग 8.5.3 देखें

बोध प्रश्न 3

1) क)

2) स)

3) छ) बाकी सब धातु खनिज हैं, केवल अभ्रक गैर-धातु खनिज है।

4) ख) बाकी सब खनिजों में भारत आत्मनिर्भर है जबकि ताँबे का आयात किया जाता है।

बोध प्रश्न 4

1) क) कोयला (ख) तेल, एवं (ग) प्राकृतिक गैस

2) क) ईंधन लकड़ी (ख) कृषि के बेकार पदार्थ, एवं (ग) गोबर

3) ग)